[2018] 6 एस.सी.आर. 1076

लोक प्रहरी अपने महासचिव के माध्यम से

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य।

(रिट याचिका (सी) संख्या 864/2016)

मई 07, 2018

[रंजन गोगोई और आर. भानुमति, न्यायमूर्तिगण]

उत्तर प्रदेश मंत्री (वेतन, भत्ते और विविध प्रावधान) अधिनियम, 1981 - धारा 4(3) (जैसा कि 2016 के संशोधन द्वारा डाला गया) - प्रावधान के तहत, राज्य के पूर्व मुख्यमंत्री अपने जीवन काल के लिए सरकारी आवास के आवंटन के हकदार थे - की वैधता को चुनौती: अभिनिर्धारित: वर्तमान याचिकाकर्ता ने पहले लोक प्रहरी बनाम यूपी राज्य और अन्य में अनुच्छेद 32 के तहत सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाया था, जिसमें पूर्व मुख्यमंत्रियों को सरकारी आवास आवंटन प्रदान करने वाले 1997 के नियमों की वैधता को चुनौती दी गई थी। - न केवल उक्त रिट याचिका पर विचार किया गया बल्कि, 1997 के नियमों को रद्द कर दिया गया - 2016 के संशोधन द्वारा धारा 4(3) को क़ानून के एक मूल प्रावधान के रूप में शामिल किया गया जब 1997 के नियम समान प्रभाव के थे सुप्रीम कोर्ट द्वारा अवैध घोषित किए जाने के बाद पूर्व मुख्यमंत्रियों को सरकारी आवास के आवंटन के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा पाई गई अमान्यता को ठीक करने की आवश्यकता होगी - पहले पाया गया दोष बरकरार है - इसलिए, आक्षेपीत कानून लोक प्रहरी में सुप्रीम कोर्ट के फैसले को खत्म करने का एक प्रयास है - प्राकृतिक संसाधन, सार्वजनिक भूमि और सरकारी बंगले/आधिकारिक आवास जैसी सार्वजनिक वस्तुएं सार्वजनिक संपत्ति हैं जो देश के लोगों की हैं - मुख्यमंत्री, एक बार कार्यालय छोड़ने के बाद, आम नागरिक के बराबर होते हैं हालाँकि, अपने पद के आधार पर, वह सुरक्षा और अन्य प्रोटोकॉल का हकदार हो सकता है, लेकिन उसके जीवनकाल के दौरान रहने वाले सरकारी बंगले का आवंटन, समानता के संवैधानिक सिद्धांत द्वारा निर्देशित नहीं होगा - धारा 4 (3) भारत के संविधान के अधिकार क्षेत्र से बाहर है और इसलिए, संशोधन-2016 (2016 का यूपी अधिनियम संख्या 22) को रद्द किए जाने योग्य है। यूपी पूर्व मुख्यमंत्री आवास आवंटन नियम, 1997- उत्तर प्रदेश मंत्री और राज्य विधानमंडल अधिकारी और सदस्य सुविधाएं कानून (संशोधन) अधिनियम, 1990 (1-ए) - उत्तर प्रदेश के मंत्री और राज्य विधानमंडल, अधिकारी और सदस्य सुविधाएं कानून। (संशोधन) अधिनियम, 1997-धारा4-ए - सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860-भारत का संविधान - अनुच्छेद. 14, 32, 162 और 366ए- समानता का सिद्धांत।

भारत का संविधान -अनुच्छेद 14 -उचित वर्गीकरण का परीक्षण। -1981 के अधिनियम का 4(3) राज्य के पूर्व मुख्यमंत्रियों को पद छोड़ने के बाद आधिकारिक आवास बनाए रखने की अनुमति देता है, -क्या यह अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करता है। - अभिनिर्धारित किया गया: धारा 4(3) नागरिकों को उनके पिछले सार्वजनिक पद के आधार पर सार्वजनिक संपत्ति के वितरण के माध्यम से लाभ प्रदान करने के लिए एक अलग वर्ग बनाता है - एक बार जब ऐसे व्यक्ति अपने द्वारा पहले रखे गए सार्वजनिक पद को छोड़ देते हैं- उचित वर्गीकरण के परीक्षण में उन्हें आम आदमी से अलग करने के लिए कुछ भी नहीं है, इसलिए, 1981 अधिनियम की धारा 4(3) को विफल करना होगा, -यह भारत के संविधान के अधिकारातीत है क्योंकि यह अनुच्छेद 14 के तहत समानता खंड का उल्लंघन करता है। - उत्तर प्रदेश मंत्री (वेतन, भत्ते एवं विविध प्रावधान) अधिनियम, 1981- धारा.4(3)।

न्यायालय ने रिट याचिका को स्वीकार करते हुए

अभिनिर्धारित किया: 1.1 भारत के संविधान की प्रस्तावना अन्य बातों के साथ-साथ समानता और भाईचारे के सिद्धांतों का प्रतीक है और यह समानता और भाईचारे के इन सिद्धांतों के आधार पर है कि संविधान नागरिकों के केवल एक ही वर्ग को एक ही आवाज (वोट) के साथ मान्यता देता है। लोकतांत्रिक प्रक्रिया में पिछड़े वर्गों, महिलाओं, बच्चों, एससी/एसटी, अल्पसंख्यकों आदि के लिए किए गए प्रावधानों के अधीन नागरिकों का एक विशेष वर्ग, ऊपर उल्लिखित अपवाद के अधीन, संवैधानिक लोकाचार के लिए घृणित है। 'भारत के लोगों' का सरकार का गणतांत्रिक स्वरूप रखने का संकल्प संवैधानिक दर्शन की अभिव्यक्ति है जो राज्य द्वारा किसी भी मनमानी संप्रभु शक्ति और नागरिकों के वर्चस्व को मान्यता नहीं देता है। गणतांत्रिक स्वतंत्रता और समानता का सिद्धांत भारतीय लोकतंत्र की केंद्रीय विशेषता है। इसलिए, यह स्वयंसिद्ध है कि एक लोकतांत्रिक गणतंत्र सरकार में, सार्वजनिक प्रकृति के कर्तव्यों के साथ सौंपे गए लोक सेवकों को इस तरीके से कार्य करना चाहिए जो दर्शाता है कि अंतिम अधिकार नागरिकों में निहित है और यह नागरिक ही हैं जो अंततः सभी सार्वजनिक कार्यालयों के धारक और जवाबदेह हैं। ऐसी स्थिति केवल समानता के ढांचे के भीतर ही संभव होगी और जब सार्वजनिक कार्यालय के धारकों को दिए गए सभी विशेषाधिकार, अधिकार और लाभ उचित, तर्कसंगत और आनुपातिक होंगे। [पैरा 16-18][1088-सी-एफ]

1.2 ऐसे पदाधिकारियों के सार्वजनिक पद छोड़ने के बाद 1981 अधिनियम की धारा 4(3) में उल्लिखित संवैधानिक पदाधिकारियों को सरकारी बंगलों का आवंटन स्पष्ट रूप से भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 की कसौटी पर न्यायिक समीक्षा के अधीन होगा। यह विशेष रूप से इसलिए है क्योंकि ऐसे बंगले सार्वजनिक संपत्ति होते हैं जो स्वयं दुर्लभ होते हैं और सार्वजनिक कार्यालयों के वर्तमान धारकों के उपयोग के लिए होते हैं। उपरोक्त बात 1997 के संशोधन

अधिनियम (1997 का अधिनियम 8) द्वारा 1981 के अधिनियम में धारा 4-ए की स्थापना द्वारा प्रकट होती है। इसलिए, ऐसी संपत्ति के आवंटन से संबंधित प्रश्न, निस्संदेह, सार्वजनिक चरित्र के प्रश्न हैं और इसलिए, इन्हें उचित वर्गीकरण के साथ-साथ मनमानी की कसौटी पर भी निपटाया जा सकता है। वर्तमान याचिकाकर्ता ने पहले यूपी पूर्व मुख्यमंत्रियों के निवास आवंटन नियम, 1997 की वैधता को चुनौती देते हुए संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाया था। न केवल उक्त रिट याचिका पर विचार किया गया था, बल्कि 1997 के नियमों को वास्तव में खारिज कर दिया गया था। ऐसा करते हुए, इस न्यायालय ने, अन्य बातों के अलावा, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के आलोक में 1997 के नियमों की वैधता पर विचार किया था। 2016 के संशोधन द्वारा धारा 4(3) को क़ानून के एक मूल प्रावधान के रूप में शामिल करना, जब 1997 के उसी प्रभाव के नियमों को न्यायालय द्वारा अमान्य घोषित कर दिया गया था, तो पूर्व मुख्यमंत्रियों को सरकारी आवास आवंटन के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा पाई गई अमान्यता को ठीक करने की आवश्यकता होगी। पहले पाई गई खराबी बरकरार है। इसलिए, विवादित कानून को सुप्रीम कोर्ट के फैसले को खत्म करने का प्रयास माना जा सकता है। [पैरा 36,37][1097-बी-जी]

1.3 प्राकृतिक संसाधन, सार्वजनिक भूमि और सरकारी बंगले/आधिकारिक आवास जैसी सार्वजनिक वस्तुएं सार्वजनिक संपत्ति हैं जो देश के लोगों की हैं। 'समानता का सिद्धांत' जो न्याय, निष्पक्षता की अवधारणाओं से उत्पन्न होता है, उसे इसके वितरण/आवंटन में राज्य का मार्गदर्शन करना चाहिए। मुख्यमंत्री, एक बार कार्यालय छोड़ने के बाद, आम नागरिक के बराबर होते हैं, हालांकि पद पर बने रहने के कारण, वह सुरक्षा और अन्य प्रोटोकॉल के हकदार हो सकते हैं। लेकिन उसके जीवनकाल के दौरान रहने वाले सरकारी बंगले का आवंटन, समानता के संवैधानिक सिद्धांत द्वारा निर्देशित नहीं होगा। 1981 अधिनियम की धारा 4(3) के निर्माण का प्रभाव नागरिकों को उनके पिछले सार्वजनिक पद के आधार पर सार्वजनिक संपत्ति के वितरण के माध्यम से लाभ प्रदान करने के लिए अलग वर्ग बनाने जैसा होगा। एक बार जब ऐसे व्यक्ति अपने पहले के सार्वजनिक पद को त्याग देते हैं तो उन्हें आम आदमी से अलग करने के लिए कुछ भी नहीं रह जाता है। उनके द्वारा आयोजित सार्वजनिक पद इतिहास का विषय बन जाता है और इसलिए, सार्वजनिक पद के पिछले धारकों को विशेष विशेषाधिकारों के लाभ के हकदार व्यक्तियों की एक विशेष श्रेणी के रूप में वर्गीकृत करने के लिए उचित वर्गीकरण का आधार नहीं बन सकता है। इसलिए, उचित वर्गीकरण का परीक्षण विफल होना ही है। इतना ही नहीं, कानून यानी 1981 अधिनियम की धारा 4(3) जो सार्वजनिक पद के पूर्व धारकों को नागरिकों के एक विशेष वर्ग के रूप में मान्यता देती है, उपरोक्त संदर्भ में देखा जाए तो यह मनमाना और भेदभावपूर्ण प्रतीत होगा, जिससे समानता खंड का उल्लंघन होगा। यह अप्रासंगिक और कानूनी रूप से अस्वीकार्य विचारों पर आधारित एक विधायी अभ्यास है, जो किसी भी संवैधानिक पवित्रता द्वारा समर्थित नहीं है। [पैरा 38,39][1097-जी-एच; 1098-ए-डी]

1.4 1981 अधिनियम की धारा 4(3) भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 की परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो सकती है और इसलिए, रद्द किये जाने योग्य है। 1981 अधिनियम की धारा 4(3)

भारत के संविधान के अधिकारातीत है क्योंकि यह अनुच्छेद 14 के तहत समानता खंड का उल्लंघन करती है। [पैरा 40][1098-ई]

बुधन चौधरी और अन्य बनाम बिहार राज्य एआईआर 1955 एससी 191: [1955] एससीआर 1045; ई.पी. रोयप्पा बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य (1974) 4 एससीसी 3: [1974] 2 एससीआर 348; शायरा बानो बनाम भारत संघ और अन्य (2017) 9 एससीसी 1 - अनुसरण किया गया।

लोक प्रहरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2016) 8 एससीसी 389 [2016] 4 एससीआर 1026; विनीत नारायण और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (1998) 1 एससीसी 226: [1997] 6 पूरक। एससीआर 595; अखिल भारतीय उपभोक्ता कांग्रेस बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य (2011) 5 एससीसी 29: [2011] 5 एससीआर 77; सचिदानंद पांडे और अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य (1987) 2 एससीसी 295 [1987] 2 एससीआर 223; जनहित याचिका केंद्र और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (2012) 3 एससीसी 1: [2012] 3 एससीआर 147; प्राकृतिक संसाधन आवंटन, पुनः, 2012 का विशेष संदर्भ संख्या 1 (2012) 10 एससीसी 1: [2012] 9 एससीआर 311 पर निर्भर किया गया।

शिव सागर तिवारी बनाम भारत संघ और अन्य (1997) 1 एससीसी 444: [1996] 10 पूरक। एससीआर 925; श्री रघुनाथराव गणपतराव बनाम भारत संघ एआईआर 1993 एससी 1267: [1993] 1 एससीआर 480; विक्टोरियन ग्रेनाइट्स (पी) लिमिटेड बनाम पी. रामा राव और अन्य (1996) 10 एससीसी 665: [1996] 5 सप्ल। एससीआर 692; रमण दयाराम शेट्टी बनाम भारतीय अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा प्राधिकरण और अन्य (1979) 3 एससीसी 489 [1979] 3 एससीआर 1014; शर्मा ट्रांसपोर्ट बनाम सरकार। ए.पी. और अन्य के (2002) 2 एससीसी 188: [2001] 5 पूरक। एससीआर 390; कुमारी श्रीलेखा विद्यार्थी और अन्य बनाम यूपी राज्य। और अन्य (1991) 1 एससीसी 212: [1990] 1 पूरक। एससीआर 625; पंजाब राज्य और अन्य बनाम ब्रिजेश्वर सिंह चहल और अन्य (2016) 6 एससीसी 1: [2016] 4 एससीआर 685- संदर्भित किया गया।

केस कानून संदर्भ

[2016] 4 एससीआर 1026 के पैरा 3 पर निर्भर किया गया।
[1996] 10 पूरक। एससीआर 925 के पैरा 12 को संदर्भित किया गया।
[1997] 6 पूरक। एससीआर 595 के पैरा 19 पर निर्भर किया गया।
[1993] 1 एससीआर 480 के पैरा 20 को संदर्भित किया गया।
[1996] 5 पूरक। एससीआर 692 के पैरा 21 को संदर्भित किया गया।
[2011] 5 एससीआर 77 के पैरा 22 पर निर्भर किया गया।
[1987] 2 एससीआर 223 के पैरा 24 पर निर्भर किया गया।

[2012] 3 एससीआर 147 के पैरा 25 पर निर्भर किया गया।
[2012] 9 एससीआर 311 के पैरा 26 पर निर्भर किया गया।
[1955] एससीआर 1045 के पैरा 29 का पालन किया गया।
[1974] 2 एससीआर 348 के पैरा 29 का पालन किया गया।
[1979] 3 एससीआर 1014 के पैरा 32 को संदर्भित किया गया।
[2001] 5 पूरक। एससीआर 390 के पैरा 32 को संदर्भित किया गया।
[1990] 1 पूरक। एससीआर 625 के पैरा 32 को संदर्भित किया गया।
[2016] 4 एससीआर 685 के पैरा 32 को संदर्भित किया गया।
(2017) 9 एससीसी 1 के पैरा 34 का पालन किया गया।

सिविल मूल क्षेत्राधिकार: रिट याचिका (सिविल) संख्या 864/2016।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत।

अमन लेखी, एएसजी, ए. मारियारपुथम, महाधिवक्ता, सिक्किम, अनिल ग्रोवर, सलाहकार। जनरल, हरियाणा, अजय कुमार मिश्रा, एएजी, यूपी, अनिल ग्रोवर, एएजी, हरियाणा, सौरभ मिश्रा, एएजी, गोपाल सुब्रमण्यम, वरिष्ठ वकील, गोपाल शंकरनारायणन, पवन भूषण, श्रुतंजय, सुश्री वीरा माहुली, अर्धेन्दुमौली कुमार प्रसाद, सुश्री प्रियंका दास, संजय कुमार पाठक, राज बहादुर, सुश्री अरुणा माहुर, अवनीश अर्पुथम, सुश्री अनुराधा अर्पुथम, सुश्री सिमरन जीत, सुश्री नूपुर सिंघल, संजय क्र. विसेन, समीर अली खान, शुवोदीप रॉय, सयूज मोहनदास एम., अर्जुन गर्ग, सुश्री के. एनाटोली सेमा, वी.एन. रघुपति, भूपेश नरूला, के.वी. जगदीश्वरन, सुश्री जी इंदिरा, वी. जी. प्रगासम, एस. प्रभु रामसुब्रमण्यम, एस. मनुराज, जी प्रकाश, जिशमु एम. एल., सुश्री प्रियंका प्रकाश, सुश्री बीना प्रकाश, विजय शंकर वी. एल., विजया मोहन वी., उपस्थित पक्षों के लिए अधिवक्तागण।

एस.एन.शुक्ला (व्यक्तिगत रूप से)।

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति रंजन गोगोई, द्वारा सुनाया गया।

1. भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत यह रिट याचिका उत्तर प्रदेश मंत्री (वेतन, भत्ते और विविध प्रावधान) अधिनियम, 1981 (इसके बाद संदर्भित "1981 अधिनियम" के रूप में), 2016 में संशोधित की धारा 4(3) की वैधता को चुनौती देती है।

2. मामले का इतिहास कुछ हद तक उतार-चढ़ाव वाला है। यह दोहराना पर्याप्त होगा कि चूंकि उत्तर प्रदेश राज्य के पूर्व मुख्यमंत्रियों ने पद छोड़ने के बाद भी अपने आधिकारिक आवास पर कब्जा जारी रखा था, जो कि 1981 अधिनियम की धारा 4 का स्पष्ट उल्लंघन है, जैसा कि तब अस्तित्व में था, पहले वर्तमान याचिकाकर्ता द्वारा इलाहाबाद उच्च न्यायालय में एक रिट

याचिका दायर की गई थी। उक्त रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, पूर्व मुख्यमंत्रियों को सरकारी आवास का आवंटन प्रदान करने के लिए नियमों का एक सेट, अर्थात् "यू.पी. पूर्व मुख्यमंत्री निवास आवंटन नियम, 1997" (इसके बाद "1997 नियम" के रूप में संदर्भित) तैयार किया गया था। 1997 के नियमों के प्रावधानों की वैधता को चुनौती देने के लिए रिट याचिका में तदनुसार संशोधन किया गया था। हालाँकि, उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से दिए गए एक बयान पर उच्च न्यायालय ने इसे बंद कर दिया था कि पूर्व मुख्यमंत्रियों को अब केवल टाइप V बंगले आवंटित किए जाएंगे और वह भी किराए आदि के भुगतान पर।

3. उपरोक्त स्थिति में, वर्तमान याचिकाकर्ता ने उपरोक्त 1997 नियमों की वैधता को चुनौती देते हुए इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका (सी) संख्या 657/2004 (लोक प्रहरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) दायर की थी। 1 अगस्त 2016 के निर्णय और आदेश द्वारा, उपरोक्त रिट याचिका का उत्तर इस न्यायालय द्वारा 1997 के नियमों को रद्द करते हुए, अन्य बातों के साथ, इस आधार पर दिया गया था कि पूर्व मुख्यमंत्रियों के लिए आवास का प्रावधान उपरोक्त 1997 के नियमों के तहत किया गया था। 1981 अधिनियम की धारा 4 के प्रावधानों के साथ सीधे टकराव में था। लोक प्रहरी (उपरोक्त) में उक्त रिपोर्ट के पैराग्राफ 33, 37 और 38 नोटिस के लिए प्रासंगिक होंगे:

"33. अब हम इस मुद्दे पर विचार कर सकते हैं कि क्या 1997 के लागू नियम भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के दायरे से बाहर हैं और 1981 के अधिनियम के प्रावधानों के प्रतिकूल भी हैं। 1997 के नियमों का प्रासंगिक उद्धरण इस प्रकार है:

"4. आवास का आवंटन.-रिक्त होने पर आवास संपदा अधिकारी द्वारा ऐसे पूर्व मुख्यमंत्री को आवंटित किया जाएगा जिन्होंने इन नियमों के तहत आवेदन दिया है। इन नियमों के तहत लखनऊ के बाहर आवास आवंटन का कोई अधिकार नहीं होगा।

6. वह अवधि जिसके लिए आवंटन विद्यमान है.-पूर्व मुख्यमंत्रियों को आवास का आवंटन केवल उनके जीवनकाल के दौरान ही प्रभावी होगा। आवंटन स्वत: ही माना जाएगा। पूर्व मुख्यमंत्री की मृत्यु पर निरस्त किये गये आवेदन पत्र तथा उसमें निवासरत परिवार के सदस्यों को मृत्यु तिथि से 3 माह के भीतर संबंधित आवास का कब्जा संपदा विभाग को अनिवार्य रूप से सौंपना होगा। यदि आवास में रहने वाले परिवार के सदस्य कब्जा नहीं सौंपते हैं तो उ.प्र. सार्वजनिक परिसर (अनधिकृत कब्जेदारों की बेदखली) अधिनियम, 1972 के प्रावधानों के तहत किराया, क्षति आदि की वसूली की जाएगी।

37. यदि हम अन्य संवैधानिक पद धारकों जैसे राज्यपाल, मुख्य न्यायाधीश, केंद्रीय मंत्री और स्पीकर आदि की स्थिति को देखें तो ये सभी व्यक्ति अपने कार्यकाल के दौरान केवल एक "आधिकारिक निवास" रखते हैं। उत्तरदाताओं ने तर्क दिया है कि संघीय व्यवस्था में, केंद्र की तरह राज्य को भी पूर्व मुख्यमंत्री को आवासीय बंगला उपलब्ध कराने का अधिकार है। प्रतिवादी

राज्य की उपरोक्त दलील को इस कारण से स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि 1981 का अधिनियम ऐसा कोई प्रावधान नहीं करता है और 1997 के नियम, जो केवल कार्यकारी निर्देशों की प्रकृति में हैं और 1981 के अधिनियम के प्रावधानों के विपरीत हैं, पर कार्रवाई नहीं की जा सकती है।

38. इसके अलावा, राज्य के मुख्यमंत्री और कैबिनेट मंत्रियों की स्थिति उनके पद छोड़ने के बाद अलग-अलग नहीं हो सकती। इसके अलावा, संवैधानिक पद पर बैठे किसी भी अन्य गणमान्य व्यक्ति को ऐसी सुविधा नहीं दी जाती है। उपरोक्त कारणों से, 1997 के नियम निष्पक्ष नहीं हैं, और इससे भी अधिक, जब मंत्रियों के "वेतन और भत्ते" का विषय, 1981 अधिनियम की धारा 4(2)(ए) द्वारा शासित होता है।"

4. 1981 अधिनियम की धारा 4 को वर्ष 2016 में संशोधित किया गया था। 2016 के संशोधन (यूपी अधिनियम संख्या 22, 2016) द्वारा लाई गई धारा 4(3) के तहत, राज्य के पूर्व मुख्यमंत्री सरकारी आवास के आवंटन के हकदार बन गए। उनके जीवन काल के लिए. संशोधित उपरोक्त धारा 4(3) की वैधता पर रिट याचिकाकर्ता, एक पंजीकृत निकाय द्वारा सवाल उठाया गया है, जो "संविधान को बनाए रखने और कानून के शासन को लागू करने के लिए प्रतिबद्ध" होने का दावा करता है।

5. मूल रूप से अधिनियमित और वर्ष 2016 में 2016 के संशोधन द्वारा संशोधित अधिनियम 1981 की धारा 4 निम्नलिखित शर्तों में है:

अधिनियम की धारा 4, जैसा कि मूल रूप से अधिनियमित किया गया था	अधिनियम की धारा 4, वर्ष 2016 में संशोधन 2016 द्वारा संशोधित (यूपी अधिनियम संख्या 22 सन् 2016)
4.निवास.-(1) प्रत्येक मंत्री अपने पूरे कार्यकाल के दौरान और उसके बाद पंद्रह दिनों की अवधि के लिए लखनऊ में एक आवास का उपयोग करने के लिए बिना किसी किराए के भुगतान का हकदार होगा, जिसे सार्वजनिक खर्च पर सुसज्जित और निर्धारित पैमाना पर बनाए रखा जाएगा। (2) जहां किसी मंत्री को तदनुसार आवास उपलब्ध नहीं कराया गया है , उप-धारा (1) के साथ, या उक्त उपधारा का लाभ नहीं उठाता है, वह की दर से प्रतिपूरक भत्ते का हकदार होगा:	4. मूल अधिनियम की धारा 4 के स्थान पर निम्नलिखित धाराएं प्रतिस्थापित की जाएंगी, अर्थात्:- 4(1) मुख्यमंत्री और प्रत्येक मंत्री, अपने पूरे कार्यकाल के दौरान और उसके बाद पंद्रह दिनों की अवधि के लिए, लखनऊ में एक आवास के उपयोग के लिए बिना किसी किराए के भुगतान के हकदार होंगे, जिसका उपयोग और रखरखाव निर्धारित पैमाने पर सार्वजनिक व्यय से किया जाएगा। (2) जहां मुख्यमंत्री या मंत्री को उप-धारा (1) के अनुसार आवास प्रदान नहीं किया गया है

(ए) उपमंत्री के मामले में तीन सौ रुपये प्रति माह, और (बी) किसी अन्य मामले में पांच सौ रुपये प्रति माह	या वह उक्त उप-धारा का लाभ नहीं उठाता है, वह प्रतिपूरक भत्ते का मूल्य का हकदार होगा। (ए) मुख्यमंत्री, एक मंत्री, एक राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार) और एक राज्य मंत्री के मामले में प्रति माह दस हजार रुपये; (बी) उप मंत्री के मामले में आठ हजार रुपये प्रति माह। (3) उत्तर प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री को उनके अनुरोध पर, उनके जीवनकाल के लिए, ऐसे किराए के भुगतान पर, जैसा कि राज्य सरकार के संपत्ति विभाग द्वारा समय-समय पर निर्धारित किया जा सकता है, एक सरकारी आवास आवंटित किया जाएगा।

6. 1981 के अधिनियम को उत्तर प्रदेश के मंत्रियों और राज्य विधानमंडल, अधिकारियों और सदस्यों की सुविधाएं कानून (संशोधन) अधिनियम, 1990 (यूपी अधिनियम संख्या 5, 1990) (इसके बाद "1990 संशोधन" के रूप में संदर्भित)-धारा (1-ए) से धारा 4 तक जो निम्नलिखित शर्तों में है:

"(1-ए) प्रत्येक मंत्री जिसके उपयोग के लिए उपधारा (1) के तहत लखनऊ में आवास प्रदान किया गया है, उस उपधारा में निर्दिष्ट अवधि की समाप्ति के तुरंत बाद, ऐसे आवास को खाली कर देगा और एक अधिकारी द्वारा अधिकृत किया जाएगा। इस संबंध में राज्य सरकार आवास पर कब्ज़ा कर सकती है और इस उद्देश्य के लिए ऐसे बल का उपयोग कर सकती है जो परिस्थितियों में आवश्यक हो।

स्पष्टीकरण-इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए 'मंत्री' में वह व्यक्ति शामिल है जो मंत्री नहीं रह गया है", और इसमें वह व्यक्ति भी शामिल है जिसे मंत्री का दर्जा दिया गया था।"

7. उत्तर प्रदेश के मंत्रियों और राज्य विधानमंडल, अधिकारियों और सदस्यों की सुविधा कानून (संशोधन) अधिनियम, 1997 (यूपी अधिनियम संख्या 8, 1997) द्वारा अधिनियम 1981 में एक और संशोधन द्वारा (इसके बाद इसे "1997 संशोधन" के रूप में जाना जाता है) धारा 4 -ए डाला गया था, जिसका प्रभाव निम्नलिखित है:

"4-ए. कुछ आवासों के संबंध में विशेष प्रावधान.- (1) उत्तर प्रदेश के मंत्रियों और राज्य विधानमंडल के अधिकारियों और सदस्यों की सुविधाएं कानून (संशोधन) अधिनियम, 1997 के

प्रारंभ से, राज्य सरकार सुनिश्चित करने की दृष्टि से धारा 4 की उप-धारा (1) के तहत एक मंत्री को आवास की समय पर उपलब्धता, एक अधिसूचित आदेश द्वारा, किसी भी प्रकार-VI आवास या एक आवास को निर्दिष्ट करती है जिसमें एक मंत्री किसी भी समय नियंत्रण और प्रबंधन के तहत रहता था। राज्य सरकार का संपदा विभाग, मंत्री के निवास के रूप में और इस प्रकार निर्दिष्ट आवास केवल एक मंत्री को आवंटित किया जाएगा, किसी अन्य व्यक्ति को नहीं।

(2) राज्य सरकार, या इसके द्वारा अधिकृत कोई अधिकारी यदि धारा 4 की उप-धारा (1-ए) में निर्दिष्ट मंत्री के अलावा कोई अन्य व्यक्ति किसी आवंटन आदेश के आधार पर या अन्यथा उप-धारा (1) के तहत मंत्री के निवास के रूप में निर्दिष्ट आवास पर कब्जा कर रहा है, तो उसकी ओर से ऐसे व्यक्ति का आवंटन आदेश, यदि कोई हो, रद्द करें, और लिखित नोटिस द्वारा ऐसे व्यक्ति को नोटिस की सेवा की तारीख से पंद्रह दिनों के भीतर उक्त आवास खाली करने के लिए कहें, और यदि ऐसा व्यक्ति उक्त आवास को खाली करने में विफल रहता है उक्त अवधि में, राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में अधिकृत एक अधिकारी आवास पर कब्जा कर सकता है और इस उद्देश्य के लिए ऐसे बल का उपयोग कर सकता है जो परिस्थितियों में आवश्यक हो सकता है।

8. इस स्तर पर यह ध्यान देना सार्थक होगा कि 1981 अधिनियम की धारा 4(1-ए) को 2016 के संशोधन द्वारा हटा दिया गया है, लेकिन धारा 4-ए क़ानून की किताब में बनी हुई है।

9. ऊपर निकाले गए 1981 अधिनियम की धारा 4-ए(2) में कल्पना की गई है कि यदि मंत्री के अलावा कोई अन्य व्यक्ति धारा 4-ए (प्रकार VI) की उप-धारा (1) के तहत मंत्री के निवास के रूप में निर्दिष्ट आवास पर कब्जा कर रहा है। ऐसे व्यक्ति का आवंटन आदेश रद्द कर दिया जाएगा और रहने वाले को नोटिस की तारीख से पंद्रह दिनों के भीतर उक्त आवास खाली करना होगा। ऐसा न करने पर, प्राधिकृत अधिकारी, यदि आवश्यक हो, ऐसे बल का उपयोग करके, जो आवश्यक हो, आवास पर कब्ज़ा करने के लिए कानूनन सक्षम होगा।

10. 1981 के अधिनियम के प्रावधानों की मुख्य विशेषताओं पर ध्यान देने के बाद, वर्तमान कार्यवाही में निर्धारण के लिए जो प्रश्न उठता है, उसे संक्षेप में निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा सकता है:

"क्या 1981 अधिनियम की धारा 4(3) में उल्लिखित पदाधिकारियों द्वारा कार्यालय छोड़ने के बाद आधिकारिक आवास बनाए रखना भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 द्वारा गारंटीकृत समानता खंड का उल्लंघन है।"

11. याचिकाकर्ता - संस्था जो सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के तहत एक पंजीकृत सोसायटी है, का प्रतिनिधित्व इन कार्यवाहियों में इसके सचिव श्री एस.एन. शुक्ला द्वारा किया जाता है, जो एक सेवानिवृत्त आई.ए.एस.अधिकारी हैं। हालाँकि श्री शुक्ला ने अपने तर्कों और तर्कों

को बहुत स्पष्टता के साथ आगे बढ़ाया था, फिर भी, उठाए गए प्रश्न के महत्व को ध्यान में रखते हुए हमने इस न्यायालय के विद्वान वरिष्ठ वकील श्री गोपाल सुब्रमण्यम की सहायता लेना उचित समझा और उनकी सहायता के लिए हमने सुप्रीम कोर्ट बार एसोसिएशन के सदस्य, विद्वान वकील, श्री गोपाल शंकरनारायणन से अनुरोध करना उचित समझा। श्री गोपाल सुब्रमण्यम, विद्वान वरिष्ठ वकील और श्री गोपाल शंकरनारायणन, विद्वान वकील, दोनों ने इस न्यायालय को अपनी बहुमूल्य सहायता प्रदान की है, जिसकी सहायता को न्यायालय द्वारा वर्तमान आदेश की शुरुआत में ही स्वीकार किया जा रहा है।

12. यद्यपि वर्तमान कार्यवाही में मुद्दा सख्ती से 1981 के अधिनियम के प्रावधानों तक ही सीमित है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि विभिन्न राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों और केंद्र में भी समान/समतापूर्ण प्रावधान लागू हो सकते हैं, हमने सोचा था विद्वान न्याय मित्र के माध्यम से, संघ और सभी राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों के कानून अधिकारियों को वर्तमान रिट याचिका की लंबितता और उसमें उत्पन्न होने वाले मुद्दों के बारे में सूचित करना उचित है। इसके अनुसरण में, संघ और असम, बिहार, तमिलनाडु और ओडिशा राज्यों की प्रतिक्रियाएं प्राप्त हुई हैं। विद्वान एएसजी श्री अमन लेखी ने प्रस्तुत किया है कि सरकारी आवास देश के पूर्व राष्ट्रपतियों, उपराष्ट्रपतियों, प्रधानमंत्रियों को प्रदान किया जाता है। यह मुद्दा इस न्यायालय में शिव सागर तिवारी बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में विचार के लिए आया था, जिसमें इस न्यायालय ने मामले में की गई कार्रवाई को मौजूदा नियमों के तहत उपरोक्त गणमान्य व्यक्तियों को निम्नलिखित तरीके से आधिकारिक आवास के प्रावधान का मामले में मंजूरी दे दी है।:

"72. राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति और प्रधान मंत्री के अत्यंत उच्च संवैधानिक पद को ध्यान में रखते हुए, हमें यह कहने में कोई कठिनाई महसूस नहीं होती है कि उनके पद छोड़ने के बाद उन्हें सरकारी परिसर में समायोजित किया जाना चाहिए, ताकि उपयुक्त निवास की समस्या हल हो सके और जीवन की शाम में उन्हें परेशानी नहीं हो। इसकी शर्तें क्या होनी चाहिए, यह सरकार को तय करने का विषय है।"

13. जहां तक तमिलनाडु और ओडिशा राज्यों का संबंध है, विद्वान न्याय मित्र श्री गोपाल सुब्रमण्यम के कार्यालय द्वारा उक्त राज्यों के महाधिवक्ता से प्राप्त संचार से यह स्पष्ट है कि पूर्व मुख्यमंत्रियों के लिए आधिकारिक आवास का कोई प्रावधान नहीं है, ऐसा उक्त दो राज्यों द्वारा बनाया गया है, जबकि बिहार और असम राज्यों के मामले में ऐसा प्रावधान भारत के संविधान के अनुच्छेद 162 के तहत राज्य द्वारा जारी कार्यकारी निर्देशों द्वारा किया गया है।

14. हमने इस रिट याचिका के लंबित होने पर राज्यों के महाधिवक्ता को आवाज उठाने के लिए विद्वान न्याय मित्र से अनुरोध करना उचित समझा था ताकि राज्यों को धारा 4(3) की वैधता के निर्णय के मामले में न्यायालय को सहायता प्रदान करने में सक्षम बनाया जा सके। 1981 के अधिनियम में इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि कुछ राज्यों में सममूल्य प्रावधान लागू

हो सकते हैं। 1981 अधिनियम की धारा 4(3) की वैधता के संबंध में राज्यों द्वारा ऐसी कोई प्रतियोगिता नहीं की गई थी, सिवाय इसके कि भारत संघ की ओर से ऊपर उल्लिखित सीमा तक थी। इसलिए, हम वर्तमान अभ्यास शुरू करने के लिए आगे बढ़ते हैं, जो, हम स्पष्ट करते हैं, कि 1981 अधिनियम की धारा 4(3) की वैधता के मुद्दे तक ही सीमित है।

15. भारत के संविधान की प्रस्तावना को याद करके चर्चा शुरू करना उचित होगा जो निम्नलिखित शब्दों में है।

हम, भारत के लोग, भारत को एक संप्रभु समाजवादी धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने और इसके सभी नागरिकों को सुरक्षित करने का गंभीरता से संकल्प लेते हैं:

न्याय, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक;

स्वतंत्रता, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और पूजा की;

प्रतिष्ठा और अवसर की समानता; और उन सभी के बीच प्रचार करना

व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता को सुनिश्चित करने वाली बंधुता;

नवंबर, 1949 के इस छब्बीसवें दिन हमारी संविधान सभा में, हम इस संविधान को अपनाते हैं, अधिनियमित करते हैं और स्वयं को सौंप देते हैं।

16. भारत के संविधान की प्रस्तावना में समानता और भाईचारे के सिद्धांतों को शामिल किया गया है और समानता और भाईचारे के इन सिद्धांतों के आधार पर ही संविधान नागरिकों के केवल एक ही वर्ग को एक ही आवाज (वोट) के साथ मान्यता देता है। लोकतांत्रिक प्रक्रिया में पिछड़े वर्गों, महिलाओं, बच्चों, एससी/एसटी, अल्पसंख्यकों आदि के लिए किए गए प्रावधानों के अधीन नागरिकों का एक विशेष वर्ग, ऊपर उल्लिखित अपवाद के अधीन, संवैधानिक लोकाचार के लिए घृणित है।

17. "भारत के लोगों" का सरकार का गणतांत्रिक स्वरूप रखने का संकल्प संवैधानिक दर्शन की अभिव्यक्ति है जो राज्य द्वारा किसी भी मनमानी संप्रभु शक्ति और नागरिकों के वर्चस्व को मान्यता नहीं देता है। भारतीय लोकतंत्र की केंद्रीय विशेषता उसकी गणतांत्रिक स्वतंत्रता और समानता का सिद्धांत है।

18. इसलिए, यह स्वयंसिद्ध है कि एक लोकतांत्रिक गणतंत्र सरकार में सार्वजनिक प्रकृति के कर्तव्य सौंपे गए लोक सेवकों को इस तरीके से कार्य करना चाहिए जिससे यह प्रतिबिंबित हो कि अंतिम अधिकार नागरिकों में निहित है और नागरिक ही सभी सार्वजनिक कार्यालयों के धारक

हैं। अंततः जवाबदेह. ऐसी स्थिति केवल समानता के ढांचे के भीतर ही संभव होगी और जब सार्वजनिक कार्यालय के धारकों को दिए गए सभी विशेषाधिकार, अधिकार और लाभ उचित, तर्कसंगत और आनुपातिक होंगे।

19. यहां लॉर्ड नोलन द्वारा सार्वजनिक जीवन के सात सिद्धांतों की रिपोर्ट को दोहराना आवश्यक हो सकता है, जिसका उल्लेख विनीत नारायण और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (पैराग्राफ 54) में इस न्यायालय के फैसले में मिलता है। इस न्यायालय ने विनीत नारायण (उपरोक्त) में रिपोर्ट के पैराग्राफ 55 में कहा था:

"सार्वजनिक जीवन के ये सिद्धांत हर लोकतंत्र में सामान्य रूप से लागू होते हैं और हर किसी से अपेक्षा की जाती है कि वह सार्वजनिक पद के प्रत्येक धारक के आचरण की जांच करने में इन्हें ध्यान में रखेगा।" लॉर्ड नोलन द्वारा रिपोर्ट में सार्वजनिक जीवन के सात सिद्धांत बताए गए हैं, इस प्रकार हैं:

"सार्वजनिक जीवन के सात सिद्धांत:

निस्सवार्थता

सार्वजनिक पद के धारकों को केवल सार्वजनिक हित के संदर्भ में निर्णय लेना चाहिए। उन्हें अपने, अपने परिवार या अपने दोस्तों के लिए वित्तीय या अन्य भौतिक लाभ प्राप्त करने के लिए ऐसा नहीं करना चाहिए।

अखंडता

सार्वजनिक कार्यालय के धारकों को खुद को बाहरी व्यक्तियों या संगठनों के प्रति किसी भी वित्तीय या अन्य दायित्व के तहत नहीं रखना चाहिए जो उन्हें उनके आधिकारिक कर्तव्यों के प्रदर्शन में प्रभावित कर सकता है।

निष्पक्षतावाद

सार्वजनिक नियुक्तियाँ करने, अनुबंध देने, या पुरस्कार और लाभ के लिए व्यक्तियों की सिफारिश करने सहित सार्वजनिक व्यवसाय करने में, सार्वजनिक पद धारकों को योग्यता के आधार पर चुनाव करना चाहिए।

जवाबदेही

सार्वजनिक पद के धारक अपने निर्णयों और कार्यों के लिए जनता के प्रति जवाबदेह होते हैं और उन्हें अपने कार्यालय के लिए जो भी उचित जांच हो, उसके लिए खुद को प्रस्तुत करना होगा।

खुलापन

सार्वजनिक पद के धारकों को अपने सभी निर्णयों और कार्यों के बारे में यथासंभव खुला रहना चाहिए। उन्हें अपने निर्णयों के लिए कारण बताना चाहिए और जानकारी को केवल तभी प्रतिबंधित करना चाहिए जब व्यापक सार्वजनिक हित की स्पष्ट मांग हो।

ईमानदारी

सार्वजनिक कार्यालय के धारकों का कर्तव्य है कि वे अपने सार्वजनिक कर्तव्यों से संबंधित किसी भी निजी हितों की घोषणा करें और सार्वजनिक हित की रक्षा के लिए उत्पन्न होने वाले किसी भी संघर्ष को हल करने के लिए कदम उठाएं।

नेतृत्व

सार्वजनिक पद के धारकों को नेतृत्व और उदाहरण से इन सिद्धांतों को बढ़ावा देना और समर्थन करना चाहिए।"

20. यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण होगा कि एक वर्गहीन समाज, एक संवैधानिक दृष्टि लाने की विधायी चिंता, अन्य बातों के साथ-साथ, भारत के संविधान में छब्बीसवें (26) संशोधन में अभिव्यक्ति पाई गई जिसके द्वारा अनुच्छेद 291 और 362 को शामिल किया गया। निरस्त कर दिया गया और एक नया अनुच्छेद 366ए शामिल किया गया, जिसके परिणामस्वरूप रियासतों के शासकों को उन्हें दी गई मान्यता से वंचित कर दिया गया और प्रिवी पर्स को समाप्त करने की घोषणा की गई। पूर्व संप्रभु भारतीय राज्य कुरुंदवाड जूनियर के एक सह-शासक द्वारा परिणामी चुनौती में श्री रघुनाथराव गणपतराव बनाम भारत संघ में इस न्यायालय ने चुनौती से निपटने के दौरान, अन्य बातों के साथ, इस प्रकार बात की:

"96. प्रिवी पर्स और अधिकारों के विशेषाधिकारों का स्थायी प्रतिधारण सरकार के संप्रभु और गणतांत्रिक स्वरूप के साथ असंगत होगा। ऐसा प्रतिधारण हमारे संविधान के समतावादी स्वरूप के साथ भी असंगत होगा। यह संसद की राय है जिसने कार्रवाई की अपनी घटक शक्ति का प्रयोग करते हुए उपरोक्त प्रावधानों को निरस्त करना। अनुच्छेद 291 और 362 को हटाकर, अनुच्छेद 363-ए को सम्मिलित करके और अनुच्छेद 366 के खंड (22) में संशोधन करके प्रिवी पर्स विशेषाधिकारों, गरिमाओं आदि के अधिकार का खंडन किया गया, जिसके द्वारा शासकों की मान्यता और प्रिवी पर्स का भुगतान वापस ले लिया गया है, यह नहीं कहा जा सकता है कि इससे अनुच्छेद 14 या 19(जी) [एसआईसी 19(1)()] को ठेस पहुंची है और हमें इस तरह के

प्रस्तुतीकरण में कोई तर्क नहीं मिलता है। कोई सिद्धांत नहीं छब्बीसवें संशोधन द्वारा आर्थिक, राजनीतिक या सामाजिक न्याय का उल्लंघन किया जाता है। राजनीतिक न्याय लोगों के अधिकारों के सिद्धांत से संबंधित है, यानी सार्वभौमिक मताधिकार का अधिकार, सरकार के लोकतांत्रिक स्वरूप का अधिकार और राजनीतिक मामलों में भागीदारी का अधिकार। आर्थिक न्याय संविधान के अनुच्छेद 39 में निहित है। सामाजिक न्याय अनुच्छेद 38 में निहित है। दोनों संविधान के निदेशक सिद्धांतों में हैं। इनमें से कोई भी अधिकार इस संशोधन द्वारा संक्षिप्त या संशोधित नहीं किया गया है। हमें लगता है कि इस विवाद से हमें और अधिक परेशान होने की जरूरत नहीं है और इसलिए, हम बहस के अगले मुद्दे पर आगे बढ़ेंगे।"

21. सामाजिक-आर्थिक न्याय को सुरक्षित करने के संवैधानिक लक्ष्य के साथ असंगत राज्य की कार्रवाई का एक उदाहरण इस न्यायालय द्वारा विक्टोरियन ग्रेनाइट्स (पी) लिमिटेड बनाम। पी. रामा राव और अन्य के मामले में निपटाया गया था। उक्त मामले में, निवर्तमान पट्टेदार के अनुरोध पर, किसी भी प्रचार के बिना और दूसरों से आपत्तियां आमंत्रित किए बिना, एक निजी कंपनी के पक्ष में किसी व्यक्ति को दिए गए पट्टे के असाइनमेंट को मंजूरी देने की राज्य की कार्रवाई को स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया गया था। न्यायालय ने यह मानते हुए कि इस तरह का स्थानांतरण सामान्य भलाई और सामाजिक-आर्थिक न्याय हासिल करने के संवैधानिक उद्देश्य के विपरीत था, जिसे संविधान के मूल के रूप में वर्णित किया गया था। इस न्यायालय ने राय दी थी कि समुदाय के भौतिक संसाधनों को आम भलाई के लिए वितरित किया जाना चाहिए।

22. इसी तरह, अखिल भारतीय उपभोक्ता कांग्रेस बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य में इस न्यायालय ने कहा कि:

"48. भाग IV में "राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत" शामिल हैं जो देश के शासन में मौलिक हैं और कानून बनाने में इन सिद्धांतों को लागू करना राज्य का कर्तव्य है। अनुच्छेद 39 नीति के कुछ सिद्धांतों को निर्दिष्ट करता है कि जिनका होना आवश्यक है, राज्य द्वारा अनुसरण किया जाता है। इसके खंड (बी) में यह प्रावधान है कि राज्य, विशेष रूप से, अपनी नीति को यह सुनिश्चित करने की दिशा में निर्देशित करेगा कि समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार वितरित किया जाए कि आम हित की पूर्ति हो सके। संसद और विधानमंडल राज्यों ने कई कानून बनाए हैं और सरकारों ने समय-समय पर नीतियां बनाई हैं ताकि राष्ट्रीय संपत्ति और प्राकृतिक संसाधनों को सभी वर्गों के लोगों के बीच समान रूप से वितरित किया जा सके ताकि समाज के वंचित लोग अमीरों के साथ प्रतिस्पर्धा करने की आकांक्षा कर सकें। "

23. अखिल भारतीय (उपरोक्त) में, इस न्यायालय ने ट्रस्ट द्वारा किए गए आवेदन के आधार पर एक संस्थान को बीस एकड़ भूमि आवंटित करने की मध्य प्रदेश सरकार की कार्रवाई की वैधता की जांच की। इस न्यायालय ने माना कि भूमि के राज्य उदारता आवंटन, परमिट, लाइसेंस आदि का वितरण हमेशा निष्पक्ष और न्यायसंगत तरीके से होना चाहिए। यह माना गया

कि पक्षपात या भाई-भतीजावाद के तत्व निर्णय निर्माता द्वारा विवेक के प्रयोग को प्रभावित नहीं करेंगे। पैरा (65) में यह देखते हुए कि सार्वजनिक प्राधिकरण की प्रत्येक कार्रवाई सार्वजनिक हित द्वारा, मनमानी से मुक्त होकर निर्देशित होनी चाहिए, इसे निम्नानुसार माना गया: -

"65. जिस बात पर जोर देने की जरूरत है वह यह है कि राज्य और/या इसकी एजेंसियां/संगठन राजनीतिक संस्थाओं की इच्छा और सनक के अनुसार किसी भी व्यक्ति या राज्य के अधिकारी को उदारता नहीं दे सकते हैं और उदारता देने या लाभ प्रदान करने के लिए राज्य और/या इसकी एजेंसियों/उपकरणों की प्रत्येक कार्रवाई/निर्णय एक ठोस, पारदर्शी, स्पष्ट और अच्छी तरह से परिभाषित नीति पर आधारित होना चाहिए, जिसे आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन द्वारा जनता को अवगत कराया जाएगा और प्रचार के अन्य मान्यता प्राप्त तरीकों और ऐसी नीति को गैर-भेदभावपूर्ण और गैर-मनमाना तरीका अपनाकर लागू/निष्पादित किया जाना चाहिए। पॉलिसी से लाभान्वित होने के लिए प्रस्तावित व्यक्तियों के वर्ग या श्रेणी पर ध्यान दिए बिना। राज्य और उसकी एजेंसियों/संस्थाओं द्वारा भूमि आवंटन, कोटा अनुदान, परमिट लाइसेंस आदि जैसी उदारता का वितरण हमेशा निष्पक्ष और न्यायसंगत तरीके से किया जाना चाहिए और पक्षपात या भाई-भतीजावाद का तत्व विवेक के प्रयोग को प्रभावित नहीं करेगा, यदि कोई हो, राज्य के विशेष पदाधिकारी या अधिकारी को प्रदान किया गया।

(रेखांकित)

24. सचिदानंद पांडे और अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य में, इस न्यायालय ने कुछ उपलब्ध उदाहरणों का उल्लेख करने के बाद, निम्नलिखित सिद्धांत रखे: -

"40. बार में उद्धृत प्रासंगिक मामलों पर विचार करने पर निम्नलिखित प्रस्तावों को अच्छी तरह से स्थापित किया जा सकता है: राज्य की स्वामित्व वाली या सार्वजनिक स्वामित्व वाली संपत्ति को कार्यपालिका के पूर्ण विवेक पर नहीं निपटाया जाना चाहिए। कुछ नियम और सिद्धांत इसका पालन करना होगा। सार्वजनिक हित सर्वोपरि है। सार्वजनिक हित को सुरक्षित करने का एक तरीका, जब किसी संपत्ति का निपटान करना आवश्यक समझा जाता है, तो सार्वजनिक नीलामी द्वारा या निविदाएं आमंत्रित करके संपत्ति को बेचना है। हालांकि यही है सामान्य नियम, यह एक अपरिवर्तनीय नियम नहीं है। ऐसी स्थितियाँ हो सकती हैं जहाँ ऐसे बाध्यकारी कारण हों जिनके लिए नियम से हटना आवश्यक हो, लेकिन फिर हटने के कारण तर्कसंगत होने चाहिए और भेदभाव का संकेत नहीं देने चाहिए। सार्वजनिक न्याय की उपस्थिति उतनी ही महत्वपूर्ण है जितना की न्याय करना जरूरी है। ऐसा कुछ भी नहीं किया जाना चाहिए जिससे पक्षपात, नौकरीखोरी या भाई-भतीजावाद का आभास हो।"

(रेखांकित है)

25. अखिल भारतीय (उपरोक्त) और सच्चिदानंद पांडे (उपरोक्त) के बाद, सेंटर फॉर पब्लिक इंटरेस्ट लिटिगेशन और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य में, इसे निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया था: -

"89. निष्कर्ष में, हम मानते हैं कि राज्य लोगों के ट्रस्टी के रूप में प्राकृतिक संसाधनों का कानूनी मालिक है और यद्यपि उसे इसे वितरित करने का अधिकार है, वितरण की प्रक्रिया को संवैधानिक सिद्धांतों द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए जिसमें समानता और व्यापक सार्वजनिक हित का सिद्धांत भी शामिल है।"

26. प्राकृतिक संसाधन आवंटन में, 2012 के विशेष संदर्भ संख्या 1 में, 2जी स्पेक्ट्रम के आवंटन पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने पाया कि चूंकि प्राकृतिक संसाधन सार्वजनिक सामान हैं, 'समानता का सिद्धांत' जो न्याय की अवधारणाओं से निकलता है और निष्पक्षता को प्राकृतिक संसाधनों के वितरण के लिए वास्तविक तंत्र का निर्धारण करने में राज्य का मार्गदर्शन करना चाहिए। प्रस्तुत राय के किसी भी अधिक विस्तृत संदर्भ से बचा जा रहा है क्योंकि विकसित सिद्धांत पहले निर्धारित की गई बातों को आगे बढ़ाते हैं, जैसा कि ऊपर देखा गया है।

27. मौजूदा मुद्दे पर वापस आते हुए इस स्तर पर आगे दिए गए विवादों पर एक संक्षिप्त नजर डालना उचित हो सकता है। उत्तर प्रदेश राज्य ने यह तर्क देकर रिट याचिका को विफल करने की कोशिश की है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकारों का सीधा उल्लंघन स्थापित किया जाना चाहिए जो कि बारीकी से जांच करने पर भी कहीं भी स्पष्ट नहीं है। इसलिए, रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं है। वैकल्पिक रूप से, यह तर्क दिया गया है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत समानता खंड का उल्लंघन बहुत दूर की बात है क्योंकि पूर्व मुख्यमंत्रियों के लिए एक अलग और विशिष्ट उपचार को उचित ठहराने के लिए एक समझदार अंतर है जो अपना खुद का एक वर्ग बनाते हैं।

28. हालांकि यह सच है कि संविधान के अनुच्छेद 32 को किसी नागरिक या गैर नागरिक के मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए लागू किया जाना चाहिए, जैसा कि हो सकता है, और इसका उल्लंघन होना चाहिए, हम सिद्धांत से दूर चले गए हैं किसी व्यक्तिगत नागरिक या गैर नागरिक के मौलिक अधिकारों के उल्लंघन से लेकर किसी वर्ग के अधिकारों के उल्लंघन तक। वास्तव में, उपरोक्त परिवर्तन उस चीज़ की नींव है जो न्यायशास्त्र की एक स्वतंत्र और अभिनव धारा के रूप में विकसित हुई थी जिसे "सार्वजनिक हित याचिका" या वर्ग कार्रवाई कहा जाता है। यद्यपि यह बहुत पहले विकसित हुआ था, उपरोक्त सिद्धांत की एक गंभीर पुष्टि विनीत नारायण की रिपोर्ट के पैराग्राफ 48 में पाई जानी है (उपरोक्त) जो कि पुनर्पूंजीकरण के योग्य होगा और इसलिए, नीचे दिया गया है:

"48. भारत सरकार और स्वतंत्र समीक्षा समिति (आईआरसी) सहित सभी की आम धारणा को ध्यान में रखते हुए कि सीबीआई को किसी भी प्रकार के बाहरी प्रभाव से बचाने की आवश्यकता

है, यह जरूरी है कि तत्काल कुछ कार्रवाई की जाए कानून के शासन के उचित कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने की दृष्टि से इस स्थिति को जारी रखने से रोकें। यह संविधान में गारंटीकृत समानता की आवश्यकता है। ऐसी स्थिति में समानता का अधिकार भारतीय राजनीति का है, न कि केवल एक का कुछ व्यक्ति का। संविधान द्वारा इस न्यायालय को प्रदत्त शक्तियां इस दोष को दूर करने और समानता की अवधारणा के कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त हैं।"

(रेखांकित है)

29. न्यायिक सोच में उपरोक्त बदलाव के साथ-साथ भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत समानता खंड के उल्लंघन के संबंध में जांच के उद्देश्य से शास्त्रीय परीक्षण (वर्गीकरण परीक्षण) से एक समान रूप से महत्वपूर्ण बदलाव आया है। इसे मनमानी का अधिक गतिशील परीक्षण कहा जा सकता है। अनुच्छेद 14 की चुनौती के दो अलग-अलग आयामों को दर्शाने वाला बदलाव बुधन चौधरी और अन्य बनाम बिहार राज्य और ई.पी. रोयप्पा बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य के मामले में इस न्यायालय के निर्णयों के तुलनात्मक पढ़ने से सबसे अच्छा प्रदर्शित होता है।

30. बुधन चौधरी (उपरोक्त) में, विभेदक उपचार के एक अधिनियम को वैधता देने के लिए उचित वर्गीकरण पर आधारित शास्त्रीय परीक्षण को निम्नलिखित शब्दों में समझाया गया था:

".....अब यह अच्छी तरह से स्थापित हो गया है कि हालांकि अनुच्छेद 14 वर्ग विधान पर रोक लगाता है, लेकिन यह विधान के प्रयोजनों के लिए उचित वर्गीकरण पर रोक नहीं लगाता है। हालांकि, अनुमेय वर्गीकरण की परीक्षा पास करने के लिए दो शर्तों को पूरा करना होगा, अर्थात्, (i) वर्गीकरण को एक समझदार अंतर पर स्थापित किया जाना चाहिए जो एक साथ समूहित व्यक्तियों या चीजों को समूह से बाहर छोड़े गए अन्य लोगों से अलग करता है और, (ii) उस अंतर का उस वस्तु से तर्कसंगत संबंध होना चाहिए जिसे प्राप्त किया जाना है प्रश्नगत क़ानून द्वारा। वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर स्थापित किया जा सकता है; अर्थात्, भौगोलिक, या वस्तुओं या व्यवसायों या इसी तरह के अनुसार आवश्यक बात यह है कि वर्गीकरण के आधार और विचाराधीन कार्यवाही उद्देश्य के बीच एक संबंध होना चाहिए। इस न्यायालय के निर्णयों से यह भी अच्छी तरह से स्थापित हो गया है कि अनुच्छेद 14 न केवल एक मूल कानून द्वारा बल्कि प्रक्रिया के कानून द्वारा भी भेदभाव की निंदा करता है।"

31. अधिक गतिशील संस्करण दो दशक बाद ईपी रेयप्पा (उपरोक्त) के मामले में आया, जिसमें न्यायमूर्ति भगवती ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के दायरे को निम्नलिखित शब्दों में विस्तारित किया:

"85.....सकारात्मक दृष्टिकोण से, समानता मनमानी के विपरीत है। वास्तव में समानता और मनमानी कट्टर दुश्मन हैं; एक गणतंत्र में कानून के शासन से संबंधित है जबकि दूसरा, सनक और सनक से संबंधित है एक पूर्ण राजा का। जहां कोई कार्य मनमाना है, इसमें यह अंतर्निहित है कि यह राजनीतिक तर्क और संवैधानिक कानून दोनों के अनुसार असमान है और इसलिए अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है, और यदि यह सार्वजनिक रोजगार से संबंधित किसी भी मामले को प्रभावित करता है, तो यह भी है अनुच्छेद 16 का उल्लंघन है। अनुच्छेद 14 और 16 राज्य की कार्रवाई में मनमानी पर प्रहार करते हैं और व्यवहार की निष्पक्षता और समानता सुनिश्चित करते हैं। उनके लिए आवश्यक है कि राज्य की कार्रवाई सभी समान स्थितियों पर समान रूप से लागू होने वाले वैध प्रासंगिक सिद्धांतों पर आधारित होनी चाहिए और इसे किसी भी बाहरी व्यक्ति या अप्रासंगिक विचार द्वारा निर्देशित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यह समानता से इनकार होगा। जहां राज्य की कार्रवाई के लिए ऑपरेटिव कारण, मन की ड्योढ़ी से प्रेरित मकसद से अलग, वैध और प्रासंगिक नहीं है, लेकिन अप्रासंगिक है और अनुमेय विचारों के क्षेत्र से बाहर है, यह सत्ता का दुर्भावनापूर्ण प्रयोग होगा और यह अनुच्छेद 14 और 16 के अंतर्गत उल्लघंन में आता है। सत्ता का दुर्भावनापूर्ण प्रयोग और मनमानी एक ही बुराई से निकलने वाले अलग-अलग घातक विकिरण हैं: वास्तव में उत्तरार्द्ध पूर्व को समझता है। दोनों अनुच्छेद 14 और 16 द्वारा बाधित हैं।

32. भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के गतिशील पहलू के विकास को इस न्यायालय की कई घोषणाओं में आगे बढ़ाया गया था, जिसमें उदाहरण के तौर पर रमन दयाराम शेट्टी बनाम भारतीय अंतर्राष्ट्रीय हवाईअड्डा प्राधिकरण और अन्य; शर्मा ट्रांसपोर्ट बनाम ए.पी. सरकार और अन्य ; कुमा श्रीलेखा विद्यार्थी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और दूसरे; पंजाब राज्य और अन्य बनाम ब्रिजेश्वर सिंह चहल और अन्य के मामले का संदर्भ दिया जाना चाहिए।

33. कुमारी श्रीलेखा (उपरोक्त) के पैराग्राफ 23 और 35 को केवल रोयप्पा (उपरोक्त) में माननीय न्यायमूर्ति भगवती द्वारा निर्धारित सिद्धांत को आगे बढ़ाने में पूर्ण स्पष्टता देखने के लिए लाभ के साथ निकाला जा सकता है।

"23. इस प्रकार, वर्तमान जैसे मामले में, यदि यह दिखाया गया है कि राज्य की आक्षेपित कार्रवाई मनमानी है और इसलिए, संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है, तो प्रश्न के बावजूद विवादित अधिनियम को रद्द करने में कोई बाधा नहीं हो सकती है, इसके बावजूद कि कोई अतिरिक्त अधिकार, संविदात्मक या वैधानिक, यदि कोई हो, भी पीड़ित व्यक्तियों को उपलब्ध है।

35. अब यह बहुत अच्छी तरह से तय हो गया है कि लागू रहने के लिए राज्य की प्रत्येक कार्रवाई, मनमानी के प्रति संवेदनशील नहीं होनी चाहिए जो कि संविधान के अनुच्छेद 14 की जड़ है और कानून के शासन के लिए बुनियादी है, वह प्रणाली जो हमें नियंत्रित करती है । मनमानी क़ानून के शासन का निषेध है। प्रत्येक राज्य कार्रवाई में इस बुनियादी परीक्षण की

संतुष्टि इसकी वैधता के लिए अनिवार्य है और इस संबंध में, राज्य अनुबंध के क्षेत्र में भी किसी निजी व्यक्ति के साथ तुलना का दावा नहीं कर सकता है। अनुबंध के क्षेत्र में राज्य और एक निजी व्यक्ति के बीच इस अंतर को ध्यान में रखना होगा।"

34. "अंतिम" परिणति शायरा बानो बनाम भारत संघ और अन्य में है जहां बेंच के दो सदस्यों (माननीय आर.एफ. नरीमन और उदय उमेश ललित, न्यायमूर्तिगण) ने इस प्रकार लिखा:

"101. यह देखा जाएगा कि इंडियन एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स (बॉम्बे) (पी) लिमिटेड बनाम भारत संघ मामले में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने कहा था कि यह स्थापित कानून है कि अधीनस्थ कानून को उपलब्ध किसी भी आधार पर पूर्ण विधान के विरुद्ध चुनौती दी जा सकती है। ऐसा होने पर, जब अनुच्छेद 14 के तहत चुनौती के इस आधार की बात आती है तो दोनों प्रकार के विधानों के बीच कोई तर्कसंगत अंतर नहीं है। इसलिए, जैसा कि पूर्वोक्त निर्णयों में निर्धारित किया गया है, प्रकट मनमानी का परीक्षण लागू होगा अनुच्छेद 14 के तहत कानून के साथ-साथ अधीनस्थ कानून को अमान्य करना। इसलिए, मनमानी को प्रकट करना, विधायिका द्वारा मनमाने ढंग से, तर्कहीन तरीके से और/या पर्याप्त निर्धारण सिद्धांत के बिना किया जाना चाहिए। इसके अलावा, जब कुछ ऐसा किया जाता है जो अत्यधिक और अनुपातहीन है, तो ऐसा कानून स्पष्ट रूप से मनमाना होगा। इसलिए, हमारा यह विचार है कि स्पष्ट मनमानी के अर्थ में मनमानी, जैसा कि हमने ऊपर बताया है, अनुच्छेद 14 के तहत अस्वीकृत कानून पर भी लागू होगी।"

35. उपरोक्त दृष्टिकोण को संविधान पीठ के तीसरे सदस्य (माननीय कुरियन जोसेफ, जे.) का समर्थन प्राप्त हुआ।

36. उपरोक्त विचारों के आलोक में अधिनियम 1981 की धारा 4(3) में उल्लिखित संवैधानिक पदाधिकारियों को सरकारी बंगलों का आवंटन ऐसे पदाधिकारियों के सार्वजनिक पद छोड़ने के बाद स्पष्ट रूप से भारत के संविधान का अनुच्छेद 14 की कसौटी पर न्यायिक समीक्षा के अधीन होगा। यह विशेष रूप से इसलिए है क्योंकि ऐसे बंगले सार्वजनिक संपत्ति होते हैं जो स्वयं दुर्लभ होते हैं और सार्वजनिक कार्यालयों के वर्तमान धारकों के उपयोग के लिए होते हैं। उपरोक्त बात 1997 के संशोधन अधिनियम (1997 का अधिनियम 8) द्वारा 1981 के अधिनियम में धारा 4-ए की स्थापना द्वारा प्रकट होती है। इसलिए, ऐसी संपत्ति के आवंटन से संबंधित प्रश्न, निस्संदेह, सार्वजनिक चरित्र के प्रश्न हैं और इसलिए, इन्हें उचित वर्गीकरण के साथ-साथ मनमानी की कसौटी पर भी निपटाया जा सकता है।

37. वर्तमान याचिकाकर्ता, जैसा कि इस फैसले के शुरुआती पैराग्राफ में पहले ही देखा जा चुका है, ने पहले 1997 के नियमों की वैधता को चुनौती देते हुए संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत इस न्यायालय से संपर्क किया था। न केवल उक्त रिट याचिका पर विचार किया गया बल्कि 1997 के नियमों को वास्तव में रद्द कर दिया गया। ऐसा करते हुए, इस न्यायालय ने, अन्य

बातों के अलावा, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के आलोक में 1997 के नियमों की वैधता पर विचार किया था। 2016 के संशोधन द्वारा धारा 4(3) को क़ानून के एक मूल प्रावधान के रूप में सम्मिलित करना जब 1997 के समान नियमों को न्यायालय द्वारा अमान्य घोषित कर दिया गया था, तो पूर्व मुख्यमंत्रियों को सरकारी आवास आवंटन के मामले में इस न्यायालय द्वारा पाई गई अमान्यता को ठीक करने की आवश्यकता होगी। पहले पाई गई खराबी बरकरार है। इसलिए, विवादित कानून को लोक प्रहरी (उपरोक्त) में इस न्यायालय के फैसले को खत्म करने का एक प्रयास माना जा सकता है।

38. प्राकृतिक संसाधन, सार्वजनिक भूमि और सरकारी बंगले/आधिकारिक आवास जैसी सार्वजनिक वस्तुएं सार्वजनिक संपत्ति हैं जो देश के लोगों की हैं। 'समानता का सिद्धांत' जो न्याय, निष्पक्षता की अवधारणाओं से उत्पन्न होता है, उसे इसके वितरण/आवंटन में राज्य का मार्गदर्शन करना चाहिए। मुख्यमंत्री, एक बार पद छोड़ने के बाद, आम नागरिक के बराबर हो जाते हैं, हालांकि गुण के आधार पर वह जिस पद पर है, वह सुरक्षा और अन्य प्रोटोकॉल का हकदार हो सकता है। लेकिन उसके जीवनकाल के दौरान रहने वाले सरकारी बंगले का आवंटन, समानता के संवैधानिक सिद्धांत द्वारा निर्देशित नहीं होगा।

39. निःसंदेह, 1981 अधिनियम की धारा 4(3) में उनके द्वारा धारित पिछले सार्वजनिक पद के आधार पर सार्वजनिक संपत्ति के वितरण के माध्यम से लाभ प्रदान करने के लिए नागरिकों का एक अलग वर्ग बनाने का प्रभाव होगा। एक बार जब ऐसे व्यक्ति अपने पहले के सार्वजनिक पद को त्याग देते हैं तो उन्हें आम आदमी से अलग करने के लिए कुछ भी नहीं रह जाता है। उनके द्वारा आयोजित सार्वजनिक पद इतिहास का विषय बन जाता है और इसलिए, सार्वजनिक पद के पिछले धारकों को विशेष विशेषाधिकारों के लाभ के हकदार व्यक्तियों की एक विशेष श्रेणी के रूप में वर्गीकृत करने के लिए उचित वर्गीकरण का आधार नहीं बन सकता है। इसलिए, उचित वर्गीकरण का परीक्षण विफल होना ही है। न ही सिर्फ यह विधान यानि 1981 के अधिनियम की धारा 4(3) सार्वजनिक पद के पूर्व धारकों को नागरिकों के एक विशेष वर्ग के रूप में मान्यता देती है, जिसे उपरोक्त संदर्भ में देखा जाए तो यह मनमाना और भेदभावपूर्ण प्रतीत होगा, जिससे समानता खंड का उल्लंघन होगा, बल्कि यह अप्रासंगिक और कानूनी रूप से अस्वीकार्य विचारों पर आधारित एक विधायी अभ्यास है, जो किसी भी संवैधानिक पवित्रता द्वारा समर्थित नहीं है।

40. नतीजतन, हम मानते हैं कि 1981 अधिनियम की धारा 4(3) भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 की परीक्षा पास नहीं कर सकती है और इसलिए, रद्द किये जाने योग्य है। इसलिए, हम मानते हैं कि उत्तर प्रदेश मंत्री (वेतन, भत्ते और विविध प्रावधान) अधिनियम, 1981 की उपरोक्त धारा 4(3) भारत के संविधान के दायरे से बाहर है क्योंकि यह अनुच्छेद 14 के तहत समानता खंड का उल्लंघन करती है। अत: प्रश्नगत रिट याचिका की अनुमति दी जाती है।

रिट याचिका स्वीकार की गई।

Rang Nath Tripathi